शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.III, pp (931-936) July - Sep. 2019

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ0 वंदना सेमल्टी
एसो0 प्रोफे0, इतिहास विभाग,
एम0एम0एच0 कॉलिज, गाजियाबाद (उ0प्र0)
Email : vandanasamelty@gmail.com

सारांश

विश्व की प्रत्येक भाषा के काव्य में हर युग में राष्ट्रीय भावना का समावेश रहा है। राष्ट्रीय काव्य में समग्र राष्ट्र की चेतना प्रस्फुटित होती है। हमारे देश में तो यह राष्ट्रीय चेतना वैदिक काल से ही साहित्य में परिलक्षित होती रही है। यजुर्वेद की एक ऋचा में 'राष्ट्र में देहि' एवं अथर्ववेद की ऋचा में 'त्वा राष्ट्र भृत्याय' जैसे शब्द समाज के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। समाज ही राष्ट्र का निर्माण करता है। वाल्मीकि रामायण भी 'जननी जन्मभूमि स्वर्गादपि गरीयसी' के साथ राष्ट्रवाद की भावना को ही आगे बढ़ाती है।

मुख्य शब्द : *राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय चेतना, नवजागरण, राष्ट्र में देही, राष्ट्र भृत्याय*

प्रस्तावना

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के समकालीन कवियों व लेखकों के अपनी रचनाओं के माध्यम से इसी राष्ट्रीय काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाया। समाज को जाग्रत करने हेतु लेखनी उठाने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी के प्रथम कवि माने जाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी राष्ट्रीय नवजागरण के ऐसे उत्प्रेरक कवियों के काम हैं जिन्होंने अपने संकल्प और चिन्तन के सहारे राष्ट्रीयता की अलख जगाकर एक पूरे युग की आन्दोलित किया। इसी काल में रामधारी सिंह दिनकर, राम नरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, श्याम नारायण पाण्डे, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि हिन्दी कवियों के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में राष्ट्रवादी भावना को अपने काव्य का विशय बनाकर राष्ट्रीय चेतना को उसके चरम पर पहुँचाया।

रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय धारा के कवियों में सर्वाधिक सबल हस्ताक्षर बन कर उभरे। उनकी काव्य रचनाओं में पराधीनता के अभिशाप का प्रबल विरोध अपनी सम्पूर्ण गर्जना व भीषणता के साथ लक्षित होता है। उन्होंने स्वातन्त्रय आन्दोलन के इतिहास को इस प्रकार काव्यबद्ध किया है कि उनके कृतित्व में इतिहास बोध, समसामयिकता, परिवेश के प्रति गहन स्वचेतना तथा भविष्य दृष्टि का गूढ़, समावेश मिलता है। राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता, असफलता, उत्साह, आशा और निराशा की स्पष्ट फलक उनके काव्य में मिलती है।

दिनकर के जनजीवन में फैले नैराष्य, भाव वेदना व आक्रोश को सबल कष्ट से उतारा,

कभी 'रेणुका' से तो कभी 'हुँकार' से। जनमानस को जागरण के शंखनाद से विवादित करते हुए वे कहते हैं–

'युगधर्म का हुँकार हूँ मैं,
प्रलय गाँडीव का टंकार हूँ मैं।

इसी प्रकार 'कुरूक्षेत्र' में हुँकार भरते हैं दिनकर–

''उठो उठो कुरीतियों की राह तुम रोक दो,
बढ़ो बढ़ो कि आग में गुलामियों को झोंक दो।''

दिनकर हिन्दी साहित्य के ऐसे हस्ताक्षर हैं जो अपने सम्पूर्ण रचना काल में नवयुवकों एवं वयस्कों में समान रूप से समाहित रहे। उनकी ओजस्व भाषा–शैली, क्रान्ति और विद्रोह के स्वर प्रौढ़ विचार, गम्भीर चिन्तन तथा मौलिक दर्शन उनके काव्य की विशेषता है। बेनीपुरी जी के अनुसार–''हमारे क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व इस समय दिनकर कर रहा है। क्रान्तिवादी को जिन–जिन हृदय मन्थनों से गुजरना होता है, दिनकर जी की कविता उसकी सच्ची तस्वीर रखती है।[1]

1928 ई0 में लाहौर कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित होने पर दिनकर ने उद्घोष किया–

''टुकड़े दिखा–दिखा करते क्यों मृगपति का अपमान?
औ मद–सत्ता के मतवालों, बनो ना यूँ नादान।''

दिनकर की 'हिमालय', रचना में 1931–32 ई0 के राष्ट्रीय आन्दोलन के उपरान्त मुखरित, राष्ट्रीय भावना का स्वर गूँज उठा। नयी दिल्ली, कविता में अंग्रेजी राज के प्रति असन्तोष व प्राचीन भारत के शौर्य के दर्शन होते हैं यथा–

''आहें उठी दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें।
अरे! गरीबी के लहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारे।।

दिनकर की काव्य कृतियों में कुरूक्षेत्र का विशेष स्थान है। कवि ने कुरूक्षेत्र के युद्ध के कथानक के माध्यम से युग भावना को अभिव्यक्ति दी–

''रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने दे उनको स्वर्ग धीर।
पर, फिरा हमें गाण्डीव–गदा लौटा दे अर्जुन, भीम वीर।''

स्पष्ट है कि दिनकर मानते थे कि राष्ट्र को भीम, अर्जुन जैसे वीरों की आवश्यकता है जो अंग्रेजों के शोषण और अन्याय का दृढ़ता से प्रत्युत्तर दे सके। यही समय की माँग भी थी। सत्याग्रह के महायज्ञ में आहुति देने वालों में दिनकर भी थे। जब उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से सत्याग्रहियों को प्रेरित किया, आश्वस्त किया–

''दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य प्रकाश तुम्हारा,
लिखा जा चुका अनल अक्षरों में इतिहास तुम्हारा,
जिस मिट्टी ने लहू पिया वह फूल खिलायेगी ही,

अम्बर पर धन वन छाएगा ही उच्छवास तुम्हारा।''

1939–40 ई0 के दौरान दिनकर की तीन, पुस्तकें, प्रकाशित हुई–'रसवन्ती', द्वन्द्व–गीत और 'हुँकार'। 'हुँकार' से उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि मिली। अपने सम्पूर्ण राष्ट्रीय काव्य में दिनकर की यात्रा परम्परा से आधुनिकता की ओर रही। अपने अग्रज कवियों, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी और बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' की भाँति दिनकर, 'हुँकार' तक राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं परिस्थितियों और नायकों को आवेग–धर्मिता के धरातल पर काव्यबद्ध करते रहें।[3] आरम्भ से ही दिनकर अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण को उग्रवादी आन्दोलन से जोड़कर राष्ट्रभक्त वीरों के चरित्र को प्रस्तुत करते हैं।–

''माँ की मीठी गोद छोड़कर,
प्रणय–वेली पर खिलना,
कितना उन्मद आह् रहा
होगा फाँसी से मिलना।'' [4]

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के प्रति उन्होंने अपनी भावनाएँ 'बापू' नामक रचना में इस प्रकार व्यक्त कीं–

''ली जाँच प्रेम ने बहुत मगर, बापू तू सदा खरा उतरा,
शूली पर से भी बार, तू नूतन–ज्योति भरा उतरा।
न जाने कितना अभिशाप मिले, कितना पीना है पड़ा गरल,
फिर भी आँखों में धरी, फिर भी मुँह पर मुस्कान सरल।''

दिनकर के काव्य ने यह स्पष्ट कर दिया था कि कविता में वह शक्ति है जो अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न के विरूद्ध आग उगल सकती है तथा सत्ता के मद में चूर राजनेताओं को नींद उड़ा सकती है। वे राष्ट्र की वास्तविक सत्ता जनता को ही मानते थे। जन विरोधी ताकतों को ललकारते हुए 26 जनवरी 1950 को देश के प्रथम गणतन्त्र दिवस के अवसर पर उन्होंने कहा–

''सदियों की ठण्डी–बुझी आग सुगबुगा उभी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह सम के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'' [5]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी कवि दिनकर का हृदय अपने राष्ट्रीय धर्म का निर्वहन अपनी पूरी तत्परता के साथ करता रहा। कवि के यह अनुभव किया कि स्वतन्त्रता का लाभ शोषित–पीड़ित जन को न मिलकर कुछ व्यक्तियों तक सीमित है, जो प्रभावशाली थे। उन्होंने राजनीतिक ढ़ाँचे पर कटाक्ष करते हुए कहा–

''टोपी कहती हैं–''मैं थैली बन सकती हूँ, कुरता कहता है मुझे बोरिया ही कर लो। ईमान बचाकर, कहता है आँखे सबकी, बिकने को हूँ तैयार, खुशी से जो दे दो।''[6]

दिनकर का काव्य राष्ट्रीय आन्दोलन की समसामयिक गतिविधियों से अभिन्न रूप से सम्बद्ध रहा। वे स्वाधीनता संग्राम में अपनी कलम से भरपूर योगदान निरंतर देते रहे। दिनकर अपनी राष्ट्रीय चेतना के विषय में स्वयं उस समय की परिस्थितियों को उत्तरदायी मानते हैं। वे कहते हैं–

''**राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है।**'' पंत, प्रसाद, निराला जैसे अपने समकालीको की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं–''**वे फिर भी संयमशील रहे, किन्तु मुझ जैसे लोग राष्ट्रीय एवं क्रान्तिकारी भावनाओं के प्रवाह में बह गये।**''

वस्तुतः दिनकर की परम्परा से राष्ट्रीय कविता के संस्कार प्राप्त हुए। इस विषय में डॉ0 पुष्पा ठक्कर का कथन है–''राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित दिनकर की काव्य चेतना क्रमशः अभाव से भाव का निवृति से प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हुई है। माखनलाल चतुर्वेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राम नरेश त्रिपाठी और मैथिलीशरण गुप्त के द्वारा उन्हें राष्ट्रीय कविता के संस्कार प्राप्त हुए। वास्तव में राष्ट्रीय कविता की जो परम्परा भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र से प्रारम्भ हुई उसकी परिणति हुई दिनकर में।[8]

दिनकर के राष्ट्रीय काव्य को हम मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहला, स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बद्ध समसामयिक राष्ट्रीय काव्य व दूसरा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बदलते हुए परिवेश से प्रेरित राष्ट्रीय काव्य। कवि ने न केवल हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य की सम्पूर्ण परम्परा की विशेषताओं को अपनी कविताओं में पिरोया अपितु बदलते हुए संदर्भों के अनुरूप राष्ट्रीयता के अनेक आयाम भी प्रस्तुत किये।

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना अपनी समग्रता में दिखाई देती है। वे साम्राज्यवाद ही नहीं अपितु सामन्तवाद के भी विरोधी थे। उन्होंने उन सत्ताधीशों के विरूद्ध बेबाक होकर लिखा जो राष्ट्रीयता के चोले में पाखण्ड को ढके रहते है तथा जिनके लिये लोकतन्त्र दिखावा मात्र है व जो सत्ता प्राप्ति हेतु किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। ऐसे राष्ट्रीयता के शत्रुओं के लिए दिनकर की कविताएँ आज भी एक सांस्कृतिक तमाचा है जो बनावटी राष्ट्रवाद को ललकारता है। उनका काव्य–''**वह कौन रोता है वहाँ, इतिहास के अध्याय पर........जो आप तो लड़ता नहीं, कटवा किशोरों को मगर, आश्वस्त होकर सोचता शोणित बहा, लेकिन गई बच, लाज सारे देश की**''

'राष्ट्र देवता का विसर्जन और 'किसको नमन करूँ' में दिनकर विश्व–बन्धुत्व की ओर बढ़ते हैं। वे अखिल सृष्टि के अमरत्व और मुखशान्ति की मंगल कामना करते हैं–कि एक ऐसा समय आए जब राष्ट्र–राष्ट्र और जाति–जाति के मध्य मैत्री होगी।

''**तब उतरेगी शान्ति, मनुज का मन जब कोमल होगा,**
जहाँ आज है गरल, वहाँ शीतल गंगाजल होगा।।

चक्रवाल–378[9]

दिनकर का विश्वास था कि यदि समाज में समता व समभाव नहीं तो मात्र समाजवाद का नारा देने से मानव सुखी नहीं होगा–

''जब तक मनुज मनुज का यह, सुखभाग–नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।।

कहा जा सकता है कि दिनकर की राष्ट्रीय चेतना में ओजस्वी प्रवाह है जिसमें एक ओर क्रान्ति की ज्वाला है तो दूसरी ओर विश्व शान्ति की आकांक्षा भी। उनमें जितनी प्रखर भावना स्वधर्म और राष्ट्र के प्रति है उतनी ही विश्व–बन्धुत्व की उदान्त चेतना भी है। उनकी इसी मानवतावादी राष्ट्र चेतना को देखकर आलोचकों ने उसे आधुनिक राष्ट्रीय काव्य का युगचरण कहा है।

साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिए दिनकर को हिन्दी जगत में असीम प्यार, सम्मान और पुरस्कार मिले। उन्हें काशीनागरी प्रचारिणी सभा का पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार दो बार मिला। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय साहित्य एकेडमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, विद्या वाचस्पति की उपाधि, साहित्य चूडामणि की उपाधि तथा पद्म–भूषण उपाधि से 'अलंकृत' किया गया।

1955 ई0 में पोलैंड में अन्तर्राष्ट्रीय काव्य समारोह में उन्होंने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया। उनकी रचनाओं का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दिनकर का काव्य जनमानस में राष्ट्रीयता का अमर मंत्र फूँकने में सक्षम है, उनकी कालजयी रचनाएँ शौर्य, पराक्रम एवं स्वातन्त्रय चेतना का उद्घोष करती हैं। उनका काव्य युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत है–

''छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाए,
मत झुको अनय पर, भले व्योम फट जाए
दो बार नहीं यमराज कष्ठ धरता है,
मरता है जो, एक बार ही वो मरता है।''

आज देश को दिनकर की राष्ट्रीयता को समझने की आवश्यकता है। उनकी राष्ट्रीयता का आधार उनकी वे काव्य रचनाएँ हैं जो बालक, युवा, वृद्ध, नर–नारी सबके लिए सहज–ग्राह्य हैं। दिनकर सहीं अर्थों में राष्ट्रीय हैं, क्योंकि वे इससे पहले भारतीय हैं, भारतीय लोक भारतीय जन के हैं। देश को दिशा देना साहित्य व काव्य का कर्तव्य है। इसके द्वारा लोकचेतना का नया संचार हो सकता है। इस दृष्टि से दिनकर का राष्ट्रीयता से ओतप्रोत काव्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और भी प्रासंगिक जान पड़ता है जबकि समाज में जाति, धर्म, समुदाय, स्वार्थपरता, सामाजिक असमानता, अन्धराष्ट्रीयता तथा आर्थिक विषमताओं के कारण अनेक विसंगतियाँ सर उठाए हुए हैं। भारत, जो विश्व की एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित होने की ओर अग्रसर है। उसके मार्म की उपरोक्त बाधाओं को दूर करने में सार्थक विचार तथा प्रेरक साहित्य सहायक हो सकते हैं। जैसा कि महात्मा गाँधी ने कहा–**''राष्ट्र में कोई बुराई नहीं, बुराई तो संकीर्णता, स्वार्थपरता और अलगाव में है जो कि आधुनिक राष्ट्रों के कलंक हैं।''**

दिनकर की राष्ट्रीय अवधारणा में एक ओर देश के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव है, वहीं दूसरी ओर मानव मात्र के लिए स्वतन्त्रता, समानता व स्वाभिमान की आकांक्षा भी परिलक्षित होती है, जिसकी वर्तमान में महती आवश्यकता है। स्वतन्त्र भाव से समान साझेदारी के साथ उन्मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देती ये पंक्तियाँ कवि के राष्ट्रीय उद्घोष का सार हैं–

> ''कानो कानो को सही नहीं, चुपके चुपके, छिप आह न भर,
> तू बोल, सोचता है जो कुछ, पहरों की टुक, परवाह न कर,
> अब नहीं गाँव में भिक्षु और दिल्ली में कोई दानी है,
> तू दास किसी का नहीं स्वयं, स्वाधीन देश का प्राणी है।''

संदर्भ सूची

1 *हुँकार की भूमिका, क्रान्ति का कवि,* रामवृक्ष बेनीपुर, पृ0सं0–02
2 *दिनकर, प्रणभंग,* वायसराय की घोषणा पर, पृ0सं0–54
3 *दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता,* पृ0सं0–165
4 *दिनकर, प्रणभंग, 'शहीद अशफाक के प्रति',* पृ0सं0–54
5 *दिनकर, रामधारी सिंह, 'नील कुसुम*, उदयाचल, पटना–1, पृ0सं0–29
6 दिनकर, नीम के पत्ते, पहली वर्षगांठ, पृ0सं0–18
7 *'चक्रवाल',* भूमिका, दिनकर, पृ0सं0–33
8 डॉ0 पुष्पा ठक्कर, *दिनकर काव्य में,* युग चेतना, पृ0सं0–85
9 *चक्रवाल,* पृ0सं0–378
10 *कुरूक्षेत्र,* पृ0सं0–87